रायबरेली में किसान प्रतिरोध कांग्रेस एवं गांधी:मुंशीगंज हत्याकांड के विशेष संदर्भ में

डॉ तनवीर हुसैन
असिस्टेंट प्रोफेसर
गांधी फैज-ए-आम(पी.जी.)कॉलेज(शाह॰)

सचिन सिंह यादव
शोध अध्येता,इतिहास विभाग
गांधी फैज-ए-आम(पी.जी.)कॉलेज(शाह०)

सारांश

औपनिवेशिक भारत में बढ़ते किसान असंतोष और राष्ट्रीय आंदोलन के विस्तार के बीच 1921 का असहयोग आंदोलन एक निर्णायक ऐतिहासिक संदर्भ प्रस्तुत करता है, जिसके भीतर रायबरेली का किसान प्रतिरोध विशेष महत्व रखता है। उस समय अत्यधिक लगान, निरंतर बेदखली, विभिन्न प्रकार के अतिरिक्त कर, बेगार, तालुकेदारों द्वारा शोषण तथा सामाजिक अपमान जैसी समस्याएँ किसानों के असंतोष के प्रमुख कारण थीं। गांधीजी के नेतृत्व में कांग्रेस असहयोग आंदोलन एवं अहिंसा के माध्यम से किसानों को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ने का प्रयास कर रही थी, जबकि किसान विभिन्न रूपों में अपने शोषण के विरुद्ध प्रतिरोध कर रहे थे।

इसी क्रम में 7 जनवरी 1921 को रायबरेली के किसान सई नदी के पुल से मुंशीगंज बाजार तक अपने तीन नेताओं की रिहाई की मांग को लेकर एकत्रित हुए, जहाँ औपनिवेशिक सरकार द्वारा उन पर अंधाधुंध गोलियाँ चलाई गईं। यह घटना 'मुंशीगंज हत्याकांड' के नाम से जानी जाती है।

यह शोधपत्र किसानों की मांगों, उनके प्रतिरोध की प्रकृति तथा राष्ट्रवादी आंदोलन के साथ उनके जटिल संबंधों का विश्लेषण करता है। साथ ही, यह कांग्रेस एवं गांधीजी के किसान प्रतिरोध के प्रति दृष्टिकोण, मुंशीगंज हत्याकांड पर राष्ट्रीय प्रतिक्रिया तथा इस घटना के अपेक्षाकृत उपेक्षित रह जाने के कारणों की आलोचनात्मक जांच करता है।इस प्रकार, यह अध्ययन किसान प्रतिरोध, गांधीवादी अनुशासन और कांग्रेस की राजनीति के बीच विद्यमान अंतर्विरोधों को उजागर करता है।

मुख्य शब्द: रायबरेली,मुंशीगंज हत्याकांड, गांधीजी,कांग्रेस, तालुकेदार

प्रस्तावना

बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक दशकों में भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने एक निर्णायक मोड़ लिया, जब असहयोग आंदोलन (1920–22) के माध्यम से राजनीतिक चेतना व्यापक जनाधार तक पहुँची। इस दौर में ग्रामीण भारत, विशेषकर किसान समुदाय, राष्ट्रीय संघर्ष का सक्रिय भागीदार बना। किंतु किसानों की भागीदारी केवल राष्ट्रवादी आहवान का परिणाम नहीं थी; इसके पीछे गहरे सामाजिक-आर्थिक कारण विद्यमान थे। अवध क्षेत्र, और विशेष रूप से रायबरेली जिला, इस जटिल प्रक्रिया को समझने के लिए एक महत्वपूर्ण अध्ययन-क्षेत्र प्रस्तुत करता है। यहाँ किसान प्रतिरोध, औपनिवेशिक दमन और राष्ट्रवादी राजनीति के अंतर्संबंध स्पष्ट रूप से दिखाई देते हैं।

रायबरेली में किसान असंतोष की पृष्ठभूमि तालुकेदारी व्यवस्था, ऊँचे लगान, बेगार, अवैध वसूली,बेदखली और सामाजिक अपमान से जुड़ी थी। प्रथम विश्वयुद्ध के बाद बढ़ती महँगाई और राजस्व वसूली की कठोरता ने ग्रामीण संकट को और तीव्र कर दिया। 1918 से 1920 के बीच पंचायतों, किसान सभाओं और सामूहिक प्रतिज्ञाओं के माध्यम से किसानों ने संगठित प्रतिरोध की शुरुआत की।’[1] यह प्रतिरोध केवल आर्थिक राहत की माँग तक सीमित नहीं था, बल्कि उसमें सामाजिक सम्मान और न्याय की आकांक्षा भी निहित थी।

इसी कालखंड में महात्मा गांधी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन ने ग्रामीण राजनीति को नैतिक और वैचारिक दिशा प्रदान की। गांधीजी ने अहिंसा, सत्याग्रह और अनुशासन को आंदोलन की आधारशिला बनाया। कांग्रेस ने भी किसानों की समस्याओं को राष्ट्रीय प्रश्न से जोड़ने का प्रयास किया। तथापि, यह संबंध सरल और एकरेखीय नहीं था। जहाँ किसान तत्काल आर्थिक न्याय की अपेक्षा रखते थे, वहीं कांग्रेस और गांधीजी दीर्घकालिक राष्ट्रीय रणनीति के तहत नियंत्रित और अनुशासित आंदोलन पर बल दे रहे थे। इस प्रकार किसान प्रतिरोध और राष्ट्रवादी नेतृत्व के बीच एक अंतर्निहित तनाव उत्पन्न हुआ।

जनवरी 1921 का “मुंशीगंज हत्याकांड” इस तनाव का निर्णायक बिंदु था। रायबरेली में शांतिपूर्ण ढंग से एकत्र किसानों पर पुलिस द्वारा की गई गोलीबारी ने औपनिवेशिक राज्य की दमनकारी प्रवृत्ति को उजागर किया। साथ ही इस घटना ने यह प्रश्न भी खड़ा किया कि गांधीवादी अनुशासन और कांग्रेस की राजनीतिक रणनीति किसानों को राज्य हिंसा से किस हद तक सुरक्षा प्रदान कर सकी। आश्चर्यजनक रूप से, यह घटना राष्ट्रीय स्मृति में वह स्थान प्राप्त नहीं कर सकी जो अन्य समकालीन घटनाओं को मिला।

इतिहासलेखन दृष्टिकोण

इसे मोटे तौर पर चार धाराओं में वर्गीकृत जा सकता है — राष्ट्रवादी इतिहासलेखन, ब्रिटिश इतिहासलेखन मार्क्सवादी(सामाजिक-आर्थिक) दृष्टिकोण, और सबाल्टर्न अध्ययन परंपरा। प्रत्येक धारा ने किसान प्रतिरोध, कांग्रेस और गांधीजी की भूमिका को भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से व्याख्यायित किया है।

प्रारंभिक राष्ट्रवादी इतिहासलेखन में किसान आंदोलनों को प्रायः राष्ट्रीय आंदोलन के व्यापक विस्तार के रूप में प्रस्तुत किया गया। इस दृष्टिकोण में कांग्रेस और गांधीजी को केंद्रीय नेतृत्व के रूप में स्थापित किया गया तथा ग्रामीण उभार को स्वराज्य की आकांक्षा का स्वाभाविक परिणाम माना गया। इस परिप्रेक्ष्य में रायबरेली और अवध की घटनाएँ राष्ट्रीय चेतना के प्रसार का संकेत थीं, किंतु स्थानीय जटिलताओं और अंतर्विरोधों पर अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया गया।

ब्रिटिश साम्राज्यवादी इतिहासलेखन में किसान आंदोलनों को कानून-व्यवस्था की समस्याओं के रूप में देखा गया ,ना कि व्यापक सामाजिक- आर्थिक शोषण का परिणाम।किसान विद्रोहों को इन्होंने संगठित प्रतिरोध के बजाय छिटपुट, तर्कहीन और पूर्व-राजनीतिक अशांति के रूप में चित्रित किया ।

मार्क्सवादी और सामाजिक-आर्थिक इतिहासकारों ने इस दृष्टिकोण का आंशिक पुनर्मूल्यांकन किया। एरिक स्टोक्स और अन्य विद्वानों ने कृषि संरचना, भू-राजस्व नीतियों और वर्ग-संबंधों पर बल देते हुए किसान असंतोष को आर्थिक शोषण की पृष्ठभूमि में समझा।'[2] इस परंपरा में अवध का किसान आंदोलन तालुकेदारी व्यवस्था और औपनिवेशिक राज्य के विरुद्ध वर्गीय प्रतिक्रिया के रूप में देखा गया। किंतु इस विश्लेषण में भी कभी-कभी किसान एजेंसी की बहुआयामी राजनीतिक चेतना को सीमित रूप में प्रस्तुत किया गया।

सबाल्टर्न अध्ययन परंपरा, विशेषकर ग्यान पांडे जैसे इतिहासकारों ने अवध किसान आंदोलन को स्वतंत्र राजनीतिक चेतना के रूप में देखने का प्रयास किया। पांडे ने यह तर्क दिया कि किसान प्रतिरोध को केवल राष्ट्रवादी नेतृत्व के अधीन घटना के रूप में नहीं समझा जा सकता; उसमें अपनी आंतरिक तर्क-प्रणाली और प्रतीकात्मक राजनीति थी।'[3] इसी प्रकार डेविड हार्डिमन ने असहयोग

आंदोलन के संदर्भ में ग्रामीण भागीदारी की जटिलताओं को रेखांकित किया और गांधीवादी रणनीति तथा स्थानीय उभार के बीच तनावों की ओर संकेत किया।

फिर भी, रायबरेली के मुंशीगंज हत्याकांड पर केंद्रित विश्लेषण अपेक्षाकृत सीमित रहा है। अधिकांश अध्ययन इसे व्यापक अवध आंदोलन के एक प्रसंग के रूप में उल्लेखित करते हैं, परंतु इसे गांधीवादी अनुशासन, कांग्रेस की मध्यस्थ भूमिका और औपनिवेशिक दमन के अंतर्विरोधों के संदर्भ में विस्तृत रूप से नहीं परखते। इस शोध का उद्देश्य इसी शून्य को भरना है—मुंशीगंज को एक केंद्रीय घटना के रूप में स्थापित करते हुए यह दिखाना कि किसान प्रतिरोध और राष्ट्रवादी राजनीति के बीच संबंध सरल समर्थन का नहीं, बल्कि जटिल अंतःक्रिया और तनाव का था।

रायबरेली की कृषि संरचना और ग्रामीण संकट

रायबरेली, अवध क्षेत्र का एक प्रमुख जिला, औपनिवेशिक काल में जटिल और असमान कृषि संरचना के अंतर्गत संचालित होता था।ब्रिटिश काल में भू राजस्व के तीन पद्धतियां— स्थाई बंदोबस्त, रैय्यतवाडी व महालवाड़ी लागू थी, इसमें संयुक्त प्रांत, पंजाब का मध्य प्रांत में महालवाड़ी लागू थी, जहां महाल या गांव को कर राजस्व की एक इकाई मान लिया जाता था।'[4] राजस्व की वसूली का कार्य महाल स्तर पर जमींदार करते थे वहीं मण्डल या तालुका या तहसील के स्तर पर तालुकदार थे। अवध में सामान्यतः जमींदार, तालुकदार के अधीन कार्य करते थे। जमींदार व तालुकदारों के पास कर वसूलने के साथ पुलिस का प्रशासनिक शक्तियां भी थी, जिनके जरिए वे स्थानीय स्तर पर पूर्ण नियंत्रण बनाए हुए थे। यह वर्ग उच्च जातियों से संबंधित था वहीं इनके अधीन पट्टेदार व मध्यम किसान वर्ग था जिसमें कुर्मी, अहीर, लोध जातियां'[5] शामिल थी, जो वास्तविक उत्पादन करते थे लेकिन भूमि पर उनके स्वामित्व असुरक्षित था। सबसे निचले स्तर पर भूमिहीन मजदूर व दलित समुदाय था जो आर्थिक शोषण व सामाजिक भेदभाव दोनों का शिकार था।

राजस्व निर्धारण की नीतियां प्रायः अनुमानित उपज व बाजार मूल्य पर आधारित थी। वसूली का कुछ हिस्सा जमींदार व तालुकदार उपज का एक हिस्सा अपने पास रख लेते थे जो सामान्यतः ¼ से 1/10 के मध्य होता था।'[6] परंतु किसानों पर लगान के अतिरिक्त अवैध उपकर, सेस, बेगार(मुक्त श्रम) व निरंतर अन्यायपूर्ण बेदखली का बोझ था। साहूकारी व्यवस्था में ग्रामीण अर्थव्यवस्था को और बदतर किया।

पहले से ही गहराये इस कृषि संकट को प्रथम विश्व युद्ध (1914 से 1918) के दौरान बढ़ी महंगाई, अनाज की कीमतों में उतार-चढ़ाव और राजस्व की कठोर वसूली ने और तीव्र किया।इसी समय किसानों से 'भरती चंदा' व 'लड़ाई चंदा' की वसूली की गई।'[7]

इन्हीं परिस्थितियों ने रायबरेली में पंचायतों, सामूहिक शपथों और किसान सभाओं के रूप में संगठित प्रतिरोध की नींव रखी। कृषि व्यवस्था की यह शोषणपरक संरचना ही आगे चलकर 1919–1921 के किसान उभार और मुंशीगंज जैसी घटनाओं की पृष्ठभूमि बनी।

अवध में किसान संगठन और नेतृत्व

1918 से 1920 के बीच अवध क्षेत्र, विशेषकर रायबरेली, प्रतापगढ़ और फ़ैज़ाबाद में किसान आंदोलन ने संगठित रूप धारण करना प्रारंभ किया। यह संगठनात्मक उभार आकस्मिक नहीं था, बल्कि ग्रामीण संकट और सामाजिक असंतोष की पृष्ठभूमि में विकसित हुआ। लगान-वृद्धि, बेदखली, बेगार और तालुकेदारी दमन के विरुद्ध किसानों ने सामूहिक मंचों की आवश्यकता महसूस की, जिसके परिणामस्वरूप किसान सभाओं और पंचायतों का गठन हुआ। सर्वप्रथम प्रतापगढ़ जिले की पट्टी तहसील के ग्राम रूरे के दो भूस्वामियों – झिंगुरी सिंह और सहदेव सिंह ने 'किसान सभा' जैसी छोटी संस्था का गठन किया।ये दोनों लोग राजपूत थे'[8] जिन्हें भू- स्वामित्व से बेदखल किया गया था। इस दौर तक शहरी कांग्रेसी नेताओ को किसानों की राष्ट्रीय आंदोलन में उपयोगिता समझ में आने लगी थी। इसी उद्देश्य के तहत 1918 में 'यूनाइटेड प्रॉविन्स पीजेंट ऑर्गेनाइजेशन' या 'संयुक्त प्रांत किसान सभा' का गठन किया गया। इसका अध्यक्ष पुरुषोत्तम दास टण्डन को इंद्र नारायण द्विवेदी को सचिव तथा गौरी शंकर मिश्र ,टीकाराम और देवदत्त को उपाध्यक्ष चुना गया।'[9] मदन मोहन मालवीय जी भी इस सभा से जुड़े हुए थे, और अपने पत्र 'द लीडर' के जरिए किसान समस्याओं को उठाने तथा संगठित करने का प्रयास कर रहे थे।
संयुक्त प्रांत किसान सभा की रणनीति और कार्य उनके द्वारा जारी प्रारंभिक आठ उद्देश्यों में दिखती है ,जिसमें प्रमुख हैं—जमींदार और किसानों के बीच असमानता को नियंत्रित करना. किसानों को सामाजिक और राजनीतिक अधिकारों के संबंध में शिक्षित करना, ऐसे कानून को बदलना जो किसानों के हितों के प्रतिकूल हैं आदि। ये उद्देश्य मुख्यतः आदर्शवादी थे उनकी सीमा इस बात से भी पता चलती है कि अगस्त 1919 में एक सर्कुलर जारी कर उद्देश्यों की संख्या को 8 से 4 कर दिया गया।

संयुक्त प्रांत में किसानों का दूसरा महत्वपूर्ण संगठन 'रूरे किसान सभा' थी ।इस सभा का महत्व इसी से ज्ञात होता है कि इससे बाबा रामचंद्र, जवाहरलाल नेहरू, गौरी शंकर मिश्र और मोतीलाल नेहरू जैसे नेता जुड़े हुए थे ,अन्य प्रमुख नेताओं में माता बदल पांडे ,देवनारायण ,केदारनाथ आदि थे।

सभा का गतिविधियों में 1920 के दौरान तेजी आई, इसी बीच संयुक्त प्रांत किसान सभा व 'रूरे किसान सभा' के प्रतिनिधि एक दूसरे के संपर्क में आए और बाबा रामचंद्र ने किसान आंदोलन को राष्ट्रीय राजनीति की अगुवाई करने वाली कांग्रेस से जोड़ दिया।'[10] अक्टूबर 1920 में 'रुरे किसानसभा' का नाम बदलकर 'अवध किसान सभा' कर दिया गया।

गांधीजी और कांग्रेस का किसान आंदोलन के प्रति दृष्टिकोण

गांधीजी 1920 में राष्ट्रीय आंदोलन के प्रमुख नेतृत्वकर्ता थे। उन्होंने कांग्रेस को मध्य शहरी वर्ग की संस्था से लोगों का संगठन बना दिया , स्थानीय कांग्रेसी नेताओं के जरिए इसकी सदस्यता का विस्तार किया।। गांधीजी किसानों को भारतीय समाज की 'रीढ़' मानते थे, उनके अनुसार किसानों के बिना देश का आस्तित्व संभव नहीं है। । वे किसानों की समस्याओं जैसे अन्यायपूर्ण लगान, बेगार और जमीदारों के शोषण से भलीभॉति परिचित थे। गांधी जी इन समस्याओं के विरुद्ध शांतिपूर्ण प्रतिरोध का समर्थन करते थे। उनके अनुसार, यदि कर अन्यायपूर्ण है और किसान उसे देने में असमर्थ हैं, तो सत्याग्रह के माध्यम से उसका विरोध किया जा सकता है। यह बात गांधी जी के 'यंग इंडिया'[11] के लेखों के साथ चंपारण (1917), खेड़ा (1918) और बारदोली जैसे आंदोलनों में उनकी भागीदारी में स्पष्ट तौर पर दिखाई देती है।

किसानों के प्रत्यक्षतः ब्रिटिश सरकार से भी बड़े शोषक वर्ग जमींदारों को गांधीजी शत्रु के रूप में नहीं देखते थे। इन्हें वे ब्रिटिश सरकार का दास कहते थे। वे वर्ग-संघर्ष के बजाय "वर्ग-सहयोग" में विश्वास रखते थे। उनका मत था कि जमींदारों को भी नैतिक अपील के माध्यम से सुधार की दिशा में प्रेरित किया जा सकता है। गांधी जी स्वराज प्राप्ति के लिए भू-स्वामियों के हितों की हिफाजत जरूरी मानते थे। इसका कारण यह भी हो सकता है कि बड़े-बड़े जमींदार और तालुकेदार कांग्रेस के कार्यकर्ता थे। वे संपत्ति के अधिकार को पूरी तरह नकारते नहीं थे, बल्कि उसे "ट्रस्टीशिप" के सिद्धांत से जोड़ते थे अर्थात् संपन्न वर्ग अपनी संपत्ति का उपयोग समाज के कल्याण के लिए करे।

इस दृष्टिकोण के कारण वे किसान-जमींदार संबंधों में प्रत्यक्ष संघर्ष से बचने की सलाह देते थे। वे चाहते थे कि दोनों पक्ष संवाद और समझौते के माध्यम से समाधान खोजें।किसान आंदोलनों के प्रति गांधी का रुख समर्थन और नियंत्रण दोनों का मिश्रण था। वे ग्रामीण असंतोष को राष्ट्रीय आंदोलन से जोड़ना चाहते थे, परंतु उसे अनियंत्रित उभार में बदलने नहीं देना चाहते थे।ए .आर. देसाई के अनुसार गांधी की नीति वर्ग संघर्ष को सीमित रखने का प्रयास थी।'[12] वही डेविड हार्डिमन ने इसे गांधीजी द्वारा ग्रामीण असंतोष को नैतिक अनुशासन में रूपांतरित करने का प्रयास बताया।'[13]

कांग्रेस की संगठनात्मक नीति भी इसी सिद्धांत पर आधारित थी। 1920 के बाद कांग्रेस ने गाँवों में स्वयंसेवक दल और शाखाएँ स्थापित कर ग्रामीण राजनीतिकरण को प्रोत्साहित किया। किंतु स्थानीय नेताओं को निर्देश था कि वे किसानों को उग्र कार्रवाई—जैसे हिंसक टकराव या अनियंत्रित लगान-बहिष्कार से रोकें। कई स्थानों पर कांग्रेस नेताओं ने समझौते और याचिका की राह सुझाई, ताकि प्रशासन के साथ खुला संघर्ष टाला जा सके।

रायबरेली और अवध के संदर्भ में यह नीति विशेष रूप से महत्वपूर्ण थी। जब किसान आंदोलन तेज़ हुआ, तो गांधीजी ने संयम की अपील की। उनके लिए आंदोलन की नैतिक वैधता सर्वोपरि थी।इस प्रकार गांधी और कांग्रेस की किसान नीति सहानुभूति, राजनीतिक उपयोगिता और नैतिक नियंत्रण—तीनों के संतुलन पर आधारित थी। यही संतुलन आगे चलकर कई स्थानों पर, विशेषकर मुंशीगंज जैसी घटनाओं में, तनाव और अंतर्विरोध का कारण बना।

मुंशीगंज हत्याकांड

मुंशीगंज रायबरेली जनपद मुख्यालय से सिर्फ दो मील दूर स्थित कोतवाली क्षेत्र में आता था'[14] हम यहां पर मुंशीगंज घटना को समझने से पूर्व दो अन्य घटनाओं को समझते हैं। पहला– अगस्त 1921 प्रतापगढ में बाबा रामचंद्र और झिंगुरी सिंह की पुलिस गिरफ्तारी को किसनो की संगठित भीड़ उन्हें रिहा कराने में सफल रही। दूसरा—- रायबरेली जनपद में लूटपाट की घटनाएं निरंतर हो रही थी जैसे– डीह बाजार की लूट व चन्दनिहां'[15]की घटना, कई घटनाओं को किसानों द्वारा अंजाम दिया गया वहीं कुछ जमीदार डकैतों के साथ मिलकर यह कार्य करा रहे थे। इन घटनाओं का महत्व इसलिए है कि आगे किसान इसी विश्वास से फिर एकत्र होंगे दूसरा सरकार अपनी रिपोर्ट “कानूनी अव्यवस्था” को आधार बनाकर अपने कृत्य को न्यायसंगत ठहराएगी।

5 जनवरी 1921 चन्दनिहां में पुलिस द्वारा बाबा जानकी दास ,अमोल शर्मा और बद्री नारायण को गिरफ्तार कर लिया गया'[16]। इन्हीं को मुक्त कराने हेतु भीड़ 6 जनवरी को ही मुंशीगंज बाजार से लेकर जेल तक जमा हो चुकी थी। सई नदी के किनारे और पुल के आसपास लगभग 7000 से 10000 लोग एकत्र हो गए थे।'[17] किसान अपने साथ बडा झोला जिसमें चने का भूजा, लोटा- डोरी और हाथ में लाठी लेकर आए थे, जो उस समय आम ग्रामीण भारतीय किसान की सामान्य पहचान थी। पुलिस प्रशासन इस बार प्रतापगढ़ की घटना की पुनरावृत्ति नहीं होने देना चाहती थी उन्होंने लखनऊ से फौजें बुलाई व मुंशीगंज के पूर्वी हिस्से की घेराबंदी कर दी।डिप्टी कमिश्नर मि. शिरेफ व पुलिस अधीक्षक मि.एस.आर. मेयर्स वहां मौजूद थे।
कांग्रेसी कार्यकर्ताओं में स्थिति की भयावहता को देखते हुए मोतीलाल नेहरू को तार लिखा जो उसे समय वहां मौजूद नहीं थे परंतु उन्होंने जवाहरलाल नेहरू सहित कुछ अन्य लोगों को रायबरेली भेजा।

नेहरू पुलिस कमिश्नर के मना करने पर भी मौजूद रहे और 3000 से 4000 किसानों को संबोधित भी किया। डिप्टी कमिश्नर ने नेहरू को सभा बंद करने को कहा एवं अपने साथ गाड़ी में बैठाकर उन्हें बंगले पर ले गये।

पुलिस कमिश्नर भीड को हटाने के लिए पुल के इस तरफ आए जिधर किसान मौजूद थे, इसी दौरान पुलिस द्वारा किसानों पर गोली चला दी गई। पुलिस रिपोर्ट में यह कहा गया कि किसान उत्तेजित थे,उनके पास लाठियां थी और पुलिस पर कंकड़ पत्थर फेंकने लगे थे ।गोली चलाने में तालुकदार वीरपाल सिंह भी शामिल थी। इस गोलीकांड में कितने लोग मारे गए इसका स्पष्ट आंकड़ा उपलब्ध नहीं है, परंतु हम इसका विश्लेषण तत्काल रिपोर्ट, लेखों और उपस्थित लोगों की संख्या, सरकारी कार्रवाई आदि के आधार पर कर सकते हैं।

सरकारी रिपोर्ट के अनुसार दोपहर 2:00 बजे के बाद भीड़ द्वारा बाधित किए जाने पर 55 राउंड गोली चलाई गई ,जिसमें घुड़सवार पुलिस द्वारा 6 लोग मारे गए व 18 घायल हुए।'[18]जिला स्वतंत्रता सेनानी प्रकोष्ठ, रायबरेली में मुंशीगंज सिमारक पर कुल 21 शहीदों के नाम दर्ज किया इनमें से भी कई के नाम विवादित है।

परंतु स्थिति कुछ और ही थी, यह इससे पता लगती है कि लखनऊ, कमिश्नर कर्नल फाउनथॉर्प शाम को ही अन्य अधिकारियों व पुलिस बल के साथ घटनास्थल पर आये। ऐसा कुछ स्रोतों में कहा गया कि कई किसान घायल पड़े हुए थे, उन्हें गोली से जान से मार दिया क्योंकि इलाज के लिए भेजने पर गोली वर्षा की भयावहता का विश्वव्यापी प्रचार की आशंका थी। कुछ लाशों को नदी में बहा दिया गया ,कुछ को वहीं गड्ढे खोदकर दफन कर दिया गया। लाशों को डलमऊ के पास गंगा नदी में फेंकने हेतु तांगे वालों को 4 आने की जगह 8 आने का इनामी भत्ता देकर यह काम सोंपा गया।'[19]स्थानीय लोगों का कहना था कि 100 से ज्यादा लोग मारे गए थे। गणेश शंकर विद्यार्थी जी के पत्र 'प्रताप' [20]से इस घटना के भयावहता का अंदाजा लगता है ,13 जनवरी के आलेख में— मुंशीगंज पुल की घटना को जलियांवाला बाग की तरह नरसंहार बताया।

इन्होंने ही तालुकदार वीरपाल सिंह की फोटो सहित एक लेख में उसके द्वारा गोली चलाने का उल्लेख किया। 13 जनवरी 1921 के 'प्रताप' के अपने लेख में लिखा— पता नहीं जलियांवाला में डायर ने अपने हाथ से गोलियां चलाई थी अथवा नहीं परंतु यहां डायर का एक भाई मौजूद था। रंग और रूप में नहीं धर्म और जाति में नहीं परंतु हृदय की क्रूरता में ठीक डायर जैसा ही था।

अब प्रश्न उठता है कि इतनी बड़ी घटना पर कांग्रेस व गांधी जी की प्रतिक्रिया क्या थी ।जवाहरलाल नेहरू घटना के दिन वही मौजूद थे,कांग्रेस की ओर से नेहरू और मालवीय जी जैसे नेताओं ने व्यक्तिगत स्तर पर स्थितियों का जायजा लिया व किसान क्षेत्रों में दौरा किया।गांधीजी ने इस घटना

पर सिर्फ नैतिक दुःख और चिंता व्यक्त की। उन्होंने अपने अहिंसा के सिद्धांत से कोई समझौता नहीं किया जो सिर्फ किसानों पर लागू होता था, सरकार पर नहीं।गांधीजी ने ना तो इस क्षेत्र का दौरा किया और ना ही इस घटना की राष्ट्रीय स्तर पर निंदा कर सरकार को इस मुद्दे पर घेरा। कांग्रेस अगर चाहती तो इस मुद्दे पर एक बड़ा राष्ट्रीय आंदोलन विकसित कर सकती थी जैसे जलियाँवाला बाग़ हत्याकांड पर व्यापक राजनीतिक मुहिम का रूप दिया गया था।परंतु ऐसा कुछ भी नही किया गया इसके पीछे कई कारण थे— कांग्रेस को अपना पूरा वर्ग चरित्र बदलना पड़ता जमीदारों से कांग्रेसी किसी भी तरह की दुश्मनी मोल लेना नहीं चाहते थे। यह बात इससे भी सिद्ध होती है कि गणेश शंकर विद्यार्थी द्वारा जमींदार वीरपाल सिंह का गोली चलाने का फोटो 'प्रताप' में छापने पर उन्हें कांग्रेस कमेटी का चुनाव लड़ने से रोक दिया गया था। जवाहरलाल नेहरू ने भी कहा कि हम देश में 'वर्ग संघर्ष नहीं चाहते', इसने कांग्रेस को अंग्रेजी शासन की नाराजगी से बचाया साथ ही शासन को आंदोलनकारियों का खुला दमन करने को एक तरह से प्रोत्साहित भी किया।

कुछ इतिहासकारों का मत है कि कांग्रेस की यह सावधानी एक रणनीतिक आवश्यकता थी, क्योंकि राष्ट्रीय आंदोलन का उद्देश्य व्यापक जनसमर्थन बनाए रखना था। वहीं अन्य विद्वान इसे किसान राजनीति की सीमित स्वीकृति के रूप में देखते हैं—जहाँ कांग्रेस किसानों की शिकायतों को मान्यता तो देती है, परंतु उनके प्रतिरोध को पूर्ण राजनीतिक रूप से स्वीकार नहीं करती।

इस प्रकार मुंशीगंज हत्याकांड पर कांग्रेस और गांधीजी की प्रतिक्रिया सहानुभूति और नियंत्रण—दोनों तत्वों से युक्त थी। यह प्रतिक्रिया राष्ट्रीय आंदोलन की उस रणनीति को दर्शाती है, जिसमें नैतिक अनुशासन को प्राथमिकता दी गई, भले ही स्थानीय स्तर पर किसान प्रतिरोध को अपेक्षित राजनीतिक बल न मिले।

मुंशीगंज हत्याकांड, यद्यपि अवध के किसान आंदोलन का एक महत्वपूर्ण और रक्तरंजित अध्याय था, फिर भी राष्ट्रीय स्मृति में उसे वह स्थान नहीं मिला जो जलियाँवाला बाग़ जैसी घटनाओं को प्राप्त हुआ। यह अंतर केवल हताहतों की संख्या या घटना के पैमाने से नहीं समझा जा सकता; इसके पीछे राष्ट्रीय राजनीति, इतिहासलेखन और स्मृति-निर्माण की प्रक्रियाएँ कार्यरत थीं।राष्ट्रीय आंदोलन के दौरान और उसके बाद निर्मित ऐतिहासिक आख्यानों में वे घटनाएँ प्रमुख बन गईं जो अखिल भारतीय स्तर पर प्रतीकात्मक महत्व ग्रहण कर सकीं। जलियाँवाला बाग़ अमृतसर जैसे शहरी केंद्र में घटित हुआ और वह प्रत्यक्ष रूप से औपनिवेशिक क्रूरता का सर्वमान्य प्रतीक बन गया। इसके विपरीत मुंशीगंज एक ग्रामीण परिधि में घटित घटना थी, जिसका प्रभाव मुख्यतः स्थानीय था परिणामस्वरूप वह राष्ट्रीय प्रतीक के रूप में उभर नहीं सकी।

इतिहासकार ग्यान पांडे'[21] ने स्मृति और इतिहास के संबंध पर बल देते हुए संकेत किया है कि कौन-सी घटनाएँ "राष्ट्रीय" बनती हैं और कौन-सी "स्थानीय" रह जाती हैं, यह राजनीतिक

प्राथमिकताओं पर निर्भर करता है। मुंशीगंज की घटना ऐसे समय हुई जब कांग्रेस असहयोग आंदोलन को नियंत्रित और अनुशासित बनाए रखने की रणनीति अपना रही थी। संभवतः ग्रामीण उभार की तीव्रता को राष्ट्रीय मंच पर अधिक उभारना कांग्रेस की राजनीतिक प्राथमिकताओं के अनुकूल नहीं था।इसके अतिरिक्त, स्वतंत्रता के बाद का राष्ट्रवादी इतिहासलेखन भी मुख्यतः उन घटनाओं पर केंद्रित रहा, जो राष्ट्रीय एकता और नैतिक वैधता के व्यापक प्रतीक बन सकीं। स्थानीय किसान शहादतें इस बड़े आख्यान में समाहित नहीं हो पाईं।

इस प्रकार मुंशीगंज हत्याकांड की स्मृति का क्षीण होना यह दर्शाता है कि इतिहास केवल घटनाओं का क्रम नहीं, बल्कि चयन और व्याख्या की प्रक्रिया भी है। स्मृति का यह चयनात्मक स्वरूप हमें यह समझने में सहायता देता है कि किसान प्रतिरोध और ग्रामीण संघर्षों को राष्ट्रीय इतिहास में किस प्रकार स्थान मिला या नहीं मिला।

निष्कर्ष

रायबरेली में किसान प्रतिरोध, कांग्रेस की रणनीति और गांधीवादी अनुशासन के अंतर्संबंधों का अध्ययन यह स्पष्ट करता है कि असहयोग आंदोलन के दौरान राष्ट्रीय राजनीति और ग्रामीण उभार के बीच संबंध सरल समर्थन का नहीं, बल्कि जटिल अंतःक्रिया का था। अवध की शोषणपरक कृषि संरचना, ऊँचे लगान, बेगार और तालुकेदारी दमन ने किसानों को संगठित प्रतिरोध के लिए प्रेरित किया। 1918 से 1921 के बीच विकसित किसान संगठन और नेतृत्व ने ग्रामीण समाज में राजनीतिक चेतना का विस्तार किया, जो केवल आर्थिक सुधार की माँग तक सीमित नहीं था, बल्कि सम्मान और अधिकार की आकांक्षा से भी जुड़ा था।

गांधीजी और कांग्रेस ने किसानों की समस्याओं को राष्ट्रीय प्रश्न से जोड़ा और उन्हें असहयोग आंदोलन का हिस्सा बनाया। किंतु यह सहभागिता अनुशासन, अहिंसा और नियंत्रण की शर्तों पर आधारित थी। गांधीवादी राजनीति की नैतिक शक्ति ने आंदोलन को व्यापक वैधता प्रदान की, परंतु वही अनुशासन किसान प्रतिरोध की तीव्रता को सीमित भी करता था। कांग्रेस की भूमिका एक नेतृत्वकारी शक्ति के साथ-साथ एक मध्यस्थ संस्था की भी थी, जो ग्रामीण असंतोष को राष्ट्रीय रणनीति के अनुरूप बनाए रखना चाहती थी।

जनवरी 1921 का मुंशीगंज हत्याकांड इस अंतर्विरोध का निर्णायक क्षण सिद्ध हुआ। निहत्थे किसानों पर पुलिस की गोलीबारी ने औपनिवेशिक राज्य की दमनकारी प्रवृत्ति को उजागर किया और यह प्रश्न खड़ा किया कि क्या नैतिक और अनुशासित प्रतिरोध भी राज्य हिंसा से सुरक्षित है। कांग्रेस और गांधीजी की प्रतिक्रिया सहानुभूति से युक्त थी, किंतु उन्होंने इस घटना को राष्ट्रीय प्रतिरोध का

केंद्रीय प्रतीक नहीं बनने दिया। इससे स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय आंदोलन की प्राथमिकताएँ और स्थानीय किसान राजनीति की आकांक्षाएँ हमेशा पूर्णतः समानांतर नहीं थीं।

अंततः मुंशीगंज हत्याकांड केवल एक स्थानीय त्रासदी नहीं, बल्कि औपनिवेशिक सत्ता, किसान एजेंसी और राष्ट्रवादी रणनीति के बीच अंतर्निहित तनावों का दर्पण है। यह अध्ययन दर्शाता है कि स्वतंत्रता संग्राम के व्यापक आख्यान में ग्रामीण संघर्षों की स्वायत्तता और उनकी सीमाओं को समझना आवश्यक है। रायबरेली का अनुभव हमें यह पुनर्विचार करने के लिए प्रेरित करता है कि राष्ट्रीय आंदोलन की सफलता के पीछे कौन-सी आवाज़ें प्रमुख रहीं और कौन-सी हाशिये पर चली गईं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1.कुशवाहा,चंद्र सुभाष(2025),अवध का किसान विद्रोह(1920 से1922ई.),राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली ,पृ

2.स्टोक्स, एरिक(1978)द पीजेंट एण्ड द राज:स्ट्डीज इन एग्रेरियन सोसाइटीज एण्ड पीजेंट रिवेलियन इन कॉलोनियल इण्डिया ,कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस,

3.पांडे, ग्यान. पीजेंट रिवोल्ट एण्ड इण्डियन नेशनलिज्म: द पीजेंट मूवमेंट इन अवध,1919–22. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978.

4. सरवार, हाई फिरोज(1996), ए कंम्परेटिव स्टडी ऑफ़ जमींदारी ,रैयतवाड़ी एण्ड महलवारी लैंड रिवेन्यू सेटेलमेंट, आई.ओ.एस. आर जनरल ऑफ़ हयूमैनिटीज एंड सोशल साइंस, वॉल्यूम 2, पृ 16

5. सुभाष चंद्र कुशवाहा ,वही, पृ 39

6.फिरोज हाई सरवार,वही

7.सरकार,सुमित(2016), मार्डन इण्डिया(1885-1947), पीयर्सन,पृ 146,147

8. श्रीवास्तव,सुशील(1995), कनफ्लिक्ट इन एन एग्रेरियन सोसाइटी: अवध 1922 -1939, रिनायसेंस पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, पृ 258-259

9.प्रताप,महेन्द्र(1988), उत्तर प्रदेश में किसान आन्दोलन,वाणी प्रकाशन, दिल्ली ,पृ 55

10.कुमार,कपिल पीजेंट बिग्रेड(2011),मनोहर पब्लिशर,दिल्ली पृ 29

11. यंग इण्डिया

12.देसाई, एम०आर० (1979), भारत मेंकिसान संघर्ष ,ऑक्सफोर्ड यनिूवर्सिटी प्रेस,बाम्बे

13.हार्डिमन,डेविड (2021),नॉनकॉर्पोरेशन इन इण्डिया;नॉनवॉयलेंट स्ट्रेटेजी एण्ड प्रोटेस्ट ,1920-22

14. सुभाष चंद्र कुशवाहा ,वही, पृ 118

15.वही,पृ 122,124

16.होम/पोलिटिकल–बी /1921, नोट्स संख्या 195– 216ए, राष्ट्रीय अभिलेखागार, नई दिल्ली ,पृ 11

17.सुभाष चन्द्र कुशवाहा, वही,पृ 138

18. सिंह,श्रीराम(1985), रायबरेली किसान आन्दोलन की यज्ञ भूमि ,वीरेन्द्र प्रकाशन, सत्यनगर ,रायबरेली,   पृ 87

19. वही

20. दैनिक प्रताप,13 जनवरी 1921

21. पांडे, ग्यान. पीजेंट रिवोल्ट एण्ड इण्डियन नेशनलिज्म: द पीजेंट मूवमेंट इन अवध,1919–22. नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1978.